आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 3/अंक 3/जून 2023

Received: 12/06/2023; Accepted: 18/06/2023; Published: 24/06/2023

गिरमिटियों के उद्धार में पं.तोताराम सनाढ्य का योगदान

[1]Dr. Subashni Lata Kumar

Assistant Professor- Fiji National University

subashni.kumar@fnu.ac.fj

[2]Ms. Runaaz Ali

Lecturer-Fiji National University

runaaz.ali@fnu.ac.fj

डॉ. सुभाषिनी लता कुमार, रुनाज़ अली **"यथार्थवाद अवधारणा एवं स्वरूप"**,आखर हिंदी पत्रिका,खंड 3/अंक 3/जून 2023,(330-335)

अनुरूपी लेखक: डॉ. सुभाषिनी लता कुमार, हिन्दी प्रवक्ता, फिजी नेशनल यूनिवरसिटि, फिजी

पं. तोताराम सनाढ्य ने अपने गिरमिट अनुभव को 'फीजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष' नामक पुस्तक में दर्ज किया है। एक गिरमिटिया श्रमिक की दृष्टिकोण से लिखी यह पहली कृति है जो फीजी के करारबद्ध मजदूर प्रथा को समाप्त करने के लिए सहायक सिद्ध हुई। दक्षिण प्रशान्त महासागर में स्थित फीजी एक द्वीप देश है। ब्रिटिश शासन के दौरान भारत और फीजी के बीच सबंध स्थापित हुए। यह रिश्ता एक उपनिवेश का दूसरे उपनिवेश के साथ था। भारतीय मजदूरों को फीजी गन्ने के खेतों व मिलों में काम करने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा लाया गया, जिन्हें 'गिरमिटिया कुली' के नाम से भी जाना जाता है।

सन् 1879 से 1916 के बीच कुल 60553 भारतीय मजदूरों का पंजीकरण फीजी के लिए किया हुआ। प्रवासी भारतीय मजदूरों को 'एग्रीमेंट पर लाया गया मजदूर' कहा गया और यही 'एग्रीमेंट' शब्द आगे चलकर 'गिरमिट' और फिर 'गिरमिटिया' शब्द में बदल गया। पंडित तोताराम सनाढ्य भी एक गिरमिटिया मजदूर थे। वे आरकाटियों के जाल में फंसकर फीजी आए। फीजी में 21 वर्ष रहने के पश्चात, 27 मार्च 1914 को तोताराम सनाढ्य भारत लौट गए और वहाँ जाकर आपने 'फिजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष' नामक पुस्तक लिखी जो एक ऐतिहासिक दस्तावेज बन गई। यह पुस्तक कई भाषाओं में अनुदित भी हुई। पं. तोताराम सनाढ्य ने पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के सहयोग से फीजी में बिताए अपने लम्बे प्रवास को संस्मरण के रूप में. में 'फिजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष' नाम से प्रकाशित की।

चूकि साहित्य और समाज एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों का आपसी घनिष्ट संबंध है। समाज में घटित होने वाली सभी घटनाओं का प्रभाव साहित्य पर अवश्य पड़ता है। अतः साहित्य समाज का दर्पण है और समाज साहित्य का निर्माता। इस का उदाहरण हमें पं. तोताराम सन्नाढ्य के संस्मरण 'फीजी में मेरे इक्कीस वर्ष' (1914) में प्रकाशित, एतिहासिक कृति में परिलक्षित होता है। इस कृति का मुख्य विषय गिरमिट जीवन का कष्ट, दर्दनाक कुलीलेन का दृश्य, निराशा, क्षोभ और ग्लानि को पाठकों तक पहुँचाना था। पं. तोताराम जी 21 वर्षों तक फीजी में रहकर भारत लौटे थे, उन्होंने अपनी आप-बीती पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को सुनाई और उनके सहयोग से इसे प्रकाशित भी कराया। पं. तोताराम को यह पुस्तक लिखने की प्रेरणा पं. बनारसीदास चतुर्वेदी से ही मिली थी। इस पुस्तक का लक्ष्य था भारतवंशियों की वेदना से हिन्दुस्तान की जनता को अवगत कराना था। पुस्तक के आरंभ में उन्होंने प्रश्न उठाया है कि "हे मेरे सुशिक्षित देश बंधुओं! क्या आपने इन भाइयों के विषय में कभी विचार किया है?...क्या इन लोगों के आर्तनाद को सुनकर आप के कानों पर जूँ भी नहीं रेंगेगी?" 'फीजी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष' गिरमिट प्रथा को हटाने में सहायक सिद्ध हुई। यह पुस्तक प्रवासी हिंदी साहित्य का आरंभिक बिंदु माना जाता है।

ब्रिटिश शासन के दौरान भारत और फीजी के बीच सबंध स्थापित हुए। यह रिश्ता एक उपनिवेश का दूसरे उपनिवेश के साथ था। अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए ब्रिटिश सरकार बड़े पैमाने पर भारतीय मजदूरों को फीजी गन्ने के खेतों में काम करने के लिए ले जाते थे, जिन्हें 'गिरमिटिया कुली' कहा जाता था। सन् 1879 से 1916 के बीच कुल 60553 भारतीय मजदूरों का पंजीकरण फीजी के लिए किया गया जिनमें से 85% हिंदू, 14% मुस्लिम तथा अन्य ईसाई और सिख धर्म के थे।[1] भारतीय श्रमिक फीजी आने के लिए इसलिए तैयार हो जाते थे क्योंकि उन्हें आरकाटियों द्वारा बहकाए जाते कि थोड़े ही दिनों में वहाँ पहुँच कर तुम मालामाल हो जाओगे। 'आरकाटी' अर्थात् ब्रिटिश सरकार के एजेन्ट जो विदेश में काम करने के भारतीय श्रमिकों को राज़ी करते थे। आरकाटी लोगों को समझाते, "देखो भाई, जहाँ तुम नौकरी करोगे वहाँ तुम्हें ये दुख नहीं सहने पड़ेंगे। तुम्हें वहाँ किसी बात की तकलीफ नहीं होगी। खूब पेट-भर गन्ने और केले खाना और चैन की बंशी बजाना।" सरकार द्वारा आरकाटियों को लोगों को बहकाने के लिए कमीशन मिलता था।

पं. तोताराम सनाढ्य भारत से 1893 में एक कराबद्ध मजदूर के रूप में फीजी लाए गए थे। आपका जन्म 1876 में उत्तर प्रदेश के फ़िरोज़ाबाद जिला के हिरनगाँव, उत्तर प्रदेश में हुआ था। तोताराम सनाढ्य हिरन गाँव की पाठशाला के तीसरे दर्जे में प. कल्याण प्रसाद के पास पढ़ते थे। 1887 ई. में उनके पिता का देहांत हो गया। परिवार की दशा अत्यंत दयनीय रही, जिससे तोताराम 1893 ई. में घर छोड़कर काम की तलाश में बाहर निकल गए। पिता के देहान्त के बाद उनकी सारी सम्पत्ति साहूकारों ने हड़प ली। माँ तथा छोटे भाइयों के जीवन-यापन के लिये पैसा कमाने के उद्देश्य से उनके बड़े भाई घर छोड़कर कलकत्ता चले गये। परिवार की दशा अत्यन्त दयनीय बनी रही जिससे तोताराम भी खुद को परिवार पर बोझ समझकर घर छोड़कर काम की तलाश में बाहर निकल पड़े। तोताराम को हिंदुस्तान से फीजी गिरमिटिया श्रमिक बनाकर धोखे से 23 मई, 1893 ई. को फीजी ले जाया गया।

भारत और फीजी के बीच की दूरी लगभग बारह हजार किलोमीटर की है। कई साहित्यिक ग्रंथों ने इस बात को रेखांकित किया है कि जहाजों पर यात्रा के दौरान भारतीय मजदूरों के साथ बुरा उपचार हुआ। जहाज द्वारा भारत से फीजी की यात्रा के लिए नौकायन जहाजों को तिहत्तर दिन का समय लगता था, जबकि स्टीमर 30 दिन में पहुँच जाती थी। पं तोतोराम सनाढ्य के लिए भी कालापानी पार करने के ये तीन महीने और बारह दिन सरासर एक अपराध के अलावा और कुछ नहीं था। 'फिजीद्वीप में मेरे 21 वर्ष' में पं तोतोराम सनाढ्य जहाज पर अपने अनुभव के विषय में लिखते हैं- "हम लोगों में से प्रत्येक को डेढ़ फुट चौड़ी और छह फुट लंबी जगह दी गयी। कई लोगों ने शिकायत की कि इतने स्थान में हम नहीं रह सकते, तो गोरे डाक्टर ने ललकार कर कहा 'साला टुम को रहना होगा'। जब हम लोग बैठ चुके तो हर एक को चार-चार बिस्कुट और आधी-आधी छटांक चीनी दी गयी। इन बिस्कुटों को गोरे लोग डाग बिस्कुट कहते हैं और ये कुत्तों को खिलाये जाते हैं।"[2] इसके अतिरिक्त जहाज में सभी जाति वर्ग का एक साथ खाना, एक ही कंटेनर से पानी पीना, वस्तुओं का साझा और शौचालय की साफ-सफाई, आदि कठिन परिस्थितियाँ रही। इन भारतीयों को कुली का दर्जा दिया गया। काला पानी की यात्रा ने जाति व्यवस्था को भंग कर दिया और हिंदुओं, मुस्लिमों, और ईसाईयों को एक नए रिश्ते को आत्मसात करने के लिए मजबूर किया, जिसे " जहाजी भाई " कहा गया, जो भाई-बहन के रिश्ते को दर्शाता है।

गिरमिटियाँ मजदूरों को 5 वर्षों के अनुबंध के तहत कठिन परिस्थितियों में काम कराया गया। उन्हें प्रतिदिन 8 से 10 घंटे काम करना पड़ता और काम न करने पर प्रताड़ित भी किए जाते थे। गिरमिटियों को केवल जीवित रहने भर भोजन, वस्त्रादि दिए जाते थे। इन्हें शिक्षा, मनोरंजन आदि मूलभूत ज़रूरतों से वंचित रखा जाता था। मालिकों के बुरे व्यवहार के कारण मजदूर अकाल मौत का शिकार भी हो जाते थे। ऐसा कष्टों से भरा जीवन इन श्रमिकों को सहना पड़ा जिसे वे 'नरक' की संज्ञा देते हैं।[3] किंतु ये भारतीय हारे नहीं और वे अपने अधिकारों के लिए निडर होकर संघर्ष करते रहे।

यूरोपियन लोग भारतीय मजदूरों को 'कुली' (coolie) कहकर संबोधित करते थे। यहाँ तक की सन् 1881 की जनगणना के खाते में इनको कुली श्रेणी में दर्ज किया गया और जहाँ वे रहते थे उसे 'कुली लैन' (Coolie lines) कहा जाता था।[4] ब्रिटन सरकार द्वारा फीजी में रहने के लिए मजदूरों को कोठरियाँ मिलती थी। प्रत्येक कोठरी 12 फुट लंबी 8 फुट चौड़ी होती थी। इन 'कुली लैन' की स्थिति के संबंध में मिशनरी बर्टन लिखते हैं कि "यदि मनुष्य में थोड़ा भी हृदय हो तो संसार में सबसे अधिक कष्टदायक और विषादोत्पादक दृश्य उसके लिए यह होगा कि वह फीजी में कुली लेन को देखें।"[5] गिरमिट प्रथा के पश्चात ऐसे कितने ही स्त्री और पुरुष अपनी मातृभूमि को लौटना चाहते थे किंतु कुछ तो इस विचार से नहीं लौटे कि वहाँ पहुँचकर इनके गाँव और परिवार वाले इन्हें जाति में तो मिलाएगे नहीं, और ऊपर से वहाँ जाति-अपमान भी सहना पड़ेगा। इस मार्मिक स्थिति का विवरण तोताराम सनाढ्य इन शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं- "हमारे देश के भाई समुद्र-यात्रा कि दफा (इज़्जाम) लगा कर टापुओं से लौटे हुए अपने भाइयों को जाति से च्युत करके उन्हें

इतना कष्ट देते हैं कि जिससे दुखित हो कर वे फिर टापुओं को लौट कर चले जाते हैं और उनके धन को, जो कि उन्होंने प्रदेश में जा कर मार-पीट सह कर, आधे पेट खा-खा कर कौड़ी-कौड़ी मुश्किल से जमा किया है, कुछ तो भाई-बंधु ले लेते और कुछ स्वार्थी पुरोहित प्रायश्चित्त करने में बेदर्द होकर खर्च करवा डालते हैं।"[6] फीजी के प्रवासी भारतीयों के संदर्भ में डॉ. प्रमोद कुमार के आलेख 'सैयां गए परदेश अब लौटत नाहिं' में इसी प्रकार की स्थिति का उल्लेख मिलता है। डॉ. प्रमोद कुमार लिखते हैं- "अपनी मातृभूमि पर वापस आए प्रवासी भारतीय कुलियों को सबसे पहले कलकत्ता बंदरगाह के लोगों ने लूटा। लुट-लुटाकर जो अपने गाँव पहुँचे उन्हें उनके शेष बची-कुची खून-पसीने की कमाई डकार गए।[7]" इस कारण अधिकांश गिरमिटिया मजदूर फीजी में ही बस गए और उनकी पीढ़ियाँ वहीं जीवन व्यापन कर रही हैं।

करार की अवधि समाप्त होने पर पं. तोताराम ने फीजी में एक छोटे किसान और पुजारी का जीवन शुरू किया और अपना अधिकांश समय उन लोगों की सहायता में लगा दिया जो गिरमिटिया मजदूर अभी भी शर्तबंधी प्रथा के अंतर्गत काम कर रहे थे।

3 मई 1914 को पं. तोताराम फीजी से लौटकर कलकत्ता पहुँचने के पश्चात् 15 जून, 1914 को फिरोजाबाद के भारती भवन में पधारे। यहाँ उनकी मुलाकात पं. बनारसीदास चतुर्वेदी से हुई। पं बनारसीदास ने 'भारत मित्र' में छपे फीजी में कुली प्रथा के विरोध में पं. तोताराम द्वारा दिए गए व्याख्यान को बड़ी तन्मयता के साथ सुना था। उन्हीं विषयों के बारे में जब पं बनारसीदास ने जीवंत चित्रण सुना तो वे उद्वेलित हो उठे थे। उन्होंने पं. तोताराम से आग्रह किया कि आप अपने इन कटु अनुभवों को पुस्तकाकार में क्यों में छपा देते। पं. तोतराम ने जवाब दिया कि मैं कोई लेखक थोड़े ही हूँ। हाँ, अपना अनुभव सुना जरूर सकता हूँ। अनुभव पं. तोताराम का और लेखन पं. बनारसीदास का और इस प्रकार एक करुण गाथा तैयार हुई 'फीजी में मेरे इक्कीस वर्ष'। इस पुस्तक में दुख की कथा सुनकर लोगों का हृदय काँप उठा और कुली प्रथा के विरुद्ध आंदोलन उग्रता से आगे बढ़े। 'फीजी में मेरे इक्कीस वर्ष' से प्रेरणा पाकर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'किसान' काव्य की रचना की और श्री लक्ष्मण सिंह चौहान ने कुला प्रथा नामक एक नाटक लिखा। इसके अलावा पंडित जी ने कुली प्रथा के खिलाफ खूब प्रचार-प्रसार किया और अपनी खर्च पर हरिद्वार कुंभ में पचास हजार विज्ञापन आरकाटियों के विरुद्ध बटवाएं।

भारत गौरव- पंडित तोताराम सनाढ्य जी आरकाटियों के जाल में फंसकर गिरमिट प्रथा के अंतर्गत फीजी द्वीप आए और यहाँ उन्होंनें अपने जीवन के इक्कीस वर्ष व्यतीत किए। इस दरम्यान उन्होंने भारतीय श्रमिकों पर गिरमिट के अमानवीय प्रथा के अंतर्गत की जानेवाले अत्याचार और उनकी दुर्गति का अनुभव किया। शर्तबंदी प्रथा से मुक्ति पाने के बाद उन्होंने यथाशक्ति दीनदुखी श्रमिकों की मदद की और हिन्दू धर्म का प्रचार-प्रसार किया। भारत लौटने पर पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी की सहायता से पंडित तोताराम सनाढ्य जी की पुस्तक 'फिजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष' नाम से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में उन्होंने गिरमिटियों के प्रति हो रहे घोर अत्याचार का विस्तृत विवरण दिया जिसके कारण इस पुस्तक की ख्याति इतनी बढ़ी की इसे भारत की कई भाषाऔं में अनूदित किया गया। कई समाचार पत्रों में भी इस पुस्तक के विषय में प्रशंसात्मक लेख लिखे गए। पंडित तोताराम सनाढ्य जी की इस पुस्तक ने अन्यायपूर्ण और अमानुषिक शर्तबंदी गुलामी प्रथा याने गिरमिट प्रथा को समाप्त करने में महान योगदान प्रदान किया।

फीजी में बंधुआ मजदूर के रूप में उनसे काम कराया गया किन्तु वे अपने अधिकारों के लिए निडर होकर संघर्ष करते रहे। करार की अवधि समाप्त होने पर उन्होंने एक छोटे किसान और पुजारी का जीवन शुरू किया और उसके साथ-साथ अपना अधिकांश समय उन लोगों की सहायता में लगा दिया जो बंधुआ मजदूर के रूप में वहाँ काम कर रहे थे। वे भारतीय नेताओं के सम्पर्क में रहे और भारत से अधिक शिक्षक, वकील, कार्यकर्ता आदि भेजने का अनुरोध किया ताकि फीजी के भारतीय लोगों की दुर्दशा को कम किया जा सके। पं. तोताराम एक सच्चे समाज सेवी थे, उन्होंने प्रवासी भारतीयों के सार्वजनिक जीवन को संगठित किया। फीजी में पंडिताई के माध्यम से जनसंपर्क करते, लोगों को प्रहलाद, सत्य हरिश्चंद्र, राम-कृष्ण, तुलसी, कबीर आदि की कथाएं सुनाते। इसके साथ ही उन्होंने फीजियन भाषा भी सीखी जिसके द्वारा वे फीजियन समाज के विश्वास पात्र भी बने।

उन्होंने समय-समय पर भारतीय समाचार पत्रों को गिरमिटियों पर होने वाले जुल्म पर लेख भेजे जिसके द्वारा भारतीय जनता गिरमिट प्रथा के दुष्परिणामों से परिचित हुई। अपने पत्र व्यवहार से महात्मा गाँधी को अवगत कराते रहे। उन दिनों फीजी में अंग्रेज सरकारी वकील थे जो भारतीयों के अधिकारों के लिए लड़ने की बजाए अंग्रेज सरकार के हितैसी थे। इसलिए फीजी के भारतीय समाज को पढ़े-लिखे विश्वसनीय भारतीय लोगों की आवश्यकता थी जो मजदूरों के अधिकारों के लिए लड़ सके और उन्हें सही मार्ग दिखला सकें। फीजी के भारतीयों ने पं. तोताराम सनाढ्य के सहयोग से महात्मा गाँधी जी को पत्र लिखकर सहायता माँगी। इस कार्य के लिए देश भक्त डॉ.मनीलाल को चुना गया। डॉ.मनीलाल पेशे से एक वकील थे, उन्होंने मॉरिशस में भी प्रवासी भारतीयों के अधिकारों के लिए आंदोलन चलाया था। फीजी के भारतवंशियों ने डॉ. मनीलाल के रहने, आने-जाने और खर्चे के लिए 172 पॉउस इकट्ठे किये।[8] सन् 1912 को डॉ. मनीलाल महात्मा गाँधी और पं.तोताराम सनाढ्य के अनुरोध पर मॉरिशस से फीजी आए। डॉ. मनीलाल 'करवट' उपन्यास के एक ऐतिहासिक पात्र हैं जिन्होंने फीजी के हिन्दुस्तानी समाज के अधिकारों के लिए कई आंदोलन चलाए थे। गाँधी जी से प्रार्थना की कि वे एक विश्वसनीय बैरिस्टर को फीजी भेजने का प्रबंध करें। उन्होंने डॉ. मनीलाल को फीजी बुलाने के लिए 2600 रुपए इकट्ठा किए। ताकि वे हिन्दुस्तानियों पर हो रहे अत्याचारों के प्रति लड़ सके।

फीजी में भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में भी पं. तोताराम सनाढ्य जैसे कर्मठ और उत्साही प्रवासी भारतीय का हाथ है। फीजी की धार्मिक स्थिति सुधारने के लिए भी आपने काफी काम किया। फीजी में हिंदी को विकसित करने में धार्मिक सांस्कृतिक ग्रन्थ जैसे रामचरितमानस, हनुमान चालिसा और कबीरदास जैसे संतों की वाणी ने अहम् भूमिका निभाई है। गिरमिट काल में पराजय और निराशा की चरम स्थितियों में साहस और सांत्वना देने के अलावा गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस फीजी में भाषा, धर्म, संस्कृति और सभ्यता की रक्षा करने वाला प्रहरा रहा है। भारतीय समाज में हर मंगलवार को नियमित रूप से रामायण पाठ करने की परंपरा कई सालों से चली आ रही है। सन् 1902 पं. तोताराम सनाढ्य के मार्गदर्शन में फीजी के नाबुआ जिले में पहले रामलीला का मंचन हुआ। इस रामलीला का उद्देश्य था कि प्रवासी भारतवासियों के हृदय में अपने धर्म तथा अपने त्योहारों पर श्रद्धा बनी रहे और संगठन के बहाने शर्तबंधी भाई-बहनों के दुखों को जानने का अवसर मिलेगा।

भारतीयों को गिरमिट के अमानवीय प्रथा के प्रति जागृत करने के लिए पं. तोताराम को जितना श्रेय दे वह कम है। हम गिरमिटिया वंशज तोताराम जी के सदा ऋणी रहेंगे।

संदर्भ ग्रंथ:

[1] डॉ. अहमद अली. 1979. Girmit- A Centenary Anthology 1879-1979. Fiji Indians: A Historical Perspective. Ministry of Information, Fiji. पृष्ठ.11

[2] बनारसीदास चतुर्वेदी. 1972. गद्य कोश- फिजीद्वीप में मेरे 21 वर्ष / भाग 1 / तोताराम सनाढ्य Retrieved from - http://www.adyakosh.org/gk/फिजीद्वीप_में_मेरे_21_वर्ष_/_भाग_1_/_तोताराम_सनाढ्य

[3] डॉ. अहमद अली. 1979. Girmit- A Centenary Anthology 1879-1979. Fiji Indians- A Historical Perspective. Ministry of Information, Fiji. पृष्ठ.11

[4] कंवल, जोगिन्द्र सिंह. (1980). फीजी में हिंदी के सौ वर्ष(1879-1979). फीजी टीचस यूनियन, फीजी पृष्ठ 17.

[5] तोताराम सनाढ्य.2004. फीजी में मेरे 21 वर्ष. क्वॉलिटी प्रिंट लिमिटड, सूवा.पृष्ठ 51.

[6] बनारसीदास चतुर्वेदी. 1972. गद्य कोश- फिजीद्वीप में मेरे 21 वर्ष / भाग 1 / तोताराम सनाढ्य Retrieved from - adyakosh.org/gk/फिजीद्वीप_में_मेरे_21_वर्ष_/_भाग_1_/_तोताराम_सनाढ्य

[7] डॉ. प्रमोद कुमार. 2018. हिंदी का प्रवासी साहित्य (सं. प्रो. कालीचरण 'स्नेही'). आराधना ब्रदर्स,कानपुर. पृष्ठ 34.

[8] पं तोताराम सन्नाढ्य. फीजी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष. पृष्ठ 58

****